शिक्षक प्रशिक्षण–कुछ अनुभव

कमलेश चंद्र जोशी

शिक्षा के नीति दस्तावेज़ सुझाते हैं कि शिक्षा की कोई भी व्यवस्था अपने अध्यापकों की श्रेष्ठता से ऊपर नहीं उठ सकती है। अध्यापकों की श्रेष्ठता कई बातों पर निर्भर करती है, उनमें से एक है उनकी पेशेवर तैयारी के लिए आयोजित की जाने वाली प्रशिक्षण प्रक्रिया। लेकिन शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता और प्रासंगिकता पर अकसर सवाल उठाए जाते रहे हैं। यह उम्मीद की जाती रही है कि शिक्षकों की शिक्षा को अकादमिक जीवन की मुख्यधारा से जोड़ा जाना चाहिए। इसी सन्दर्भ में अपेक्षा की जाती है कि प्रशिक्षण के ज़रिए शिक्षक विचारशील शिक्षक या रिफ़्लेक्टिव प्रैक्टिशनर के रूप में विकसित हो, यानी अपने नज़रिए को एक सुविचारित शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्त कर पाए और अपने शिक्षण कार्य को समालोचनात्मक तरीक़े से देख पाए। लेखक ने इस लेख में शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के कुछ ऐसे ही अनुभवों का ब्योरा दिया है। सं.

शिक्षकों के पेशेवर विकास को लेकर वर्तमान समय में काफ़ी सोच-विचार किया जा रहा है। इसी सन्दर्भ में 'रिफ़्लेक्टिव प्रैक्टिशनर' या 'विचारशील शिक्षक' की शब्दावली चर्चा के दौरान सुनने को मिलती है। मोटेतौर पर इस पद से इंगित होता है कि एक शिक्षक अपने शिक्षण नज़रिए को एक सुविचारित शैक्षिक परिप्रेक्ष्य से व्यक्त कर पाए और अपने शिक्षण कार्य को समालोचनात्मक तरीक़े से देख पाए। शैक्षिक नज़रिए में बच्चों को सन्दर्भ में समझना, बच्चों के सीखने को समझना, विषय को समझना, संवैधानिक मूल्यों को समझना आदि बातें शामिल हैं। इसके साथ ही सिद्धान्त व अभ्यास के जुड़ाव को समझने की बात भी आती है। इसमें एक शिक्षक से आगे यह अपेक्षा रहती है कि उसे यह भी पता हो कि शिक्षा का व्यवहारवादी नज़रिया क्या है? इसके मायने क्या हैं? सीखने का रचनावादी नज़रिया क्या है? इसका मतलब क्या है? उसके अन्तर्गत कक्षा की प्रक्रियाएँ किस तरह की होनी चाहिए? और क्यों होनी चाहिए? शिक्षकों में इस तरह के नज़रिए विकसित करने के लिए सतत कार्य करना पड़ता है। शैक्षिक नज़रिए से काम करने के तरीक़े का विकास धीरे-धीरे होता है। इसमें शिक्षक प्रशिक्षण, स्कूल अनुसमर्थन व स्व-अध्ययन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

देशभर में शिक्षकों के लिए सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण की शुरुआत 1986 की नई शिक्षा नीति के उपरान्त ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड से मानी जा सकती है जिसमें सभी शिक्षकों के लिए सेवारत प्रशिक्षण आयोजित किया गया था। हालाँकि इन प्रशिक्षणों के आयोजन की गुणवत्ता पर भी बात होती रही। शिक्षकों के इन प्रशिक्षणों से नई शब्दावली उभरकर आई– बाल-केन्द्रित शिक्षा, गतिविधि-आधारित शिक्षण, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, टीएलएम आदि। कुछ वर्षों के बाद ये प्रशिक्षण चलताऊ लगे, लेकिन यह ज़रूर रहा कि ये प्रशिक्षण शिक्षकों के पेशेवर विकास के विमर्श का हिस्सा ज़रूर बने।

शिक्षकों के पेशेवर विकास के लिए ज़रूरी है कि उन्हें शैक्षिक व्यवस्था में, सतत रूप से क्षमतावर्धन के मौक़े उपलब्ध करवाए जाएँ,

उनके प्रशिक्षण उद्देश्यपूर्ण हों और उन्हें सुनियोजित ढंग से आयोजित किया जाए। इसके साथ ही उन्हें पुस्तकालय व इंटरनेट की सुविधा भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए। ज़रूरी है कि हम शिक्षकों को इस तरह के नियमित अवसर प्रदान करें जिसके अन्तर्गत वे अपने पारम्परिक विश्वास, मान्यताओं आदि पर पुनर्विचार कर सकें। इसके लिए शिक्षक प्रशिक्षण में उनके साथ अनौपचारिक वार्तालाप आदि गतिविधियाँ अच्छी रहती हैं, बशर्ते वे सोच-विचार के साथ आयोजित की जाएँ। इन चर्चाओं के लिए कक्षा की प्रक्रियाओं के वृत्तान्त, बच्चों के अवलोकन, किताबों के अंश आदि पर चर्चा अच्छी गतिविधियाँ हो सकती हैं। इस आलेख में ऐसे ही कुछ अनुभवों और गतिविधियों को साझा किया जा रहा है जिनसे प्रशिक्षण की गुणवत्ता और प्रतिभागियों की सक्रियता बढ़ाने में मदद मिली।

अशोक की कहानी, नामांकन और पढ़ने के तौर-तरीक़े

एक कार्यशाला में शिक्षकों के साथ कृष्ण कुमार द्वारा लिखित 'अशोक की कहानी' लेख पर चर्चा की गई। इस कहानी में बच्चों के स्कूल छोड़ने के कई कारणों में एक प्रमुख कारण– बच्चों के पढ़ना न सीख पाने– को बहुत शिद्दत के साथ उभारा गया है। इस कहानी को पढ़कर शिक्षकों ने अपनी-अपनी समझ से प्रतिक्रिया दी। उनका कहना था कि बच्चे के घर पर ध्यान दिया जाता तो वह बच्चा ज़रूर पढ़ना सीख जाता। किसी ने कहा कि एक शिक्षिका को उसके साथ और तरीक़े से काम करना चाहिए था। किसी भी शिक्षक की बातचीत में यह नहीं उभरा कि हमें पढ़ना सिखाने के अपने तरीक़ों पर फिर से विचार करना चाहिए, न ही किसी ने यह कहा कि पढ़ना न सीख पाने से बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं। अधिकतर शिक्षकों को ग़रीबी ही इसका मुख्य कारण समझ में आया। इस ओर हमें ही उनका ध्यान आकर्षित करना पड़ा और उनके स्कूल के पुराने अनुभवों को याद दिलाना पड़ा। हमने कहा कि आप अपने बचपन को याद करें और देखें कि जो बच्चे आपके साथ पहली कक्षा में थे, आगे चलकर उनमें से कितने बच्चे उच्च शिक्षा तक पहुँच पाए? तो पता चलेगा कि यह प्रतिशत बहुत कम होगा। इसको आप भी अपने अनुभव से जोड़ सकते हो कि आपके जो साथी पहली कक्षा में आपके साथ पढ़ते थे क्या उन्होंने उच्च शिक्षा पूरी की? उनमें से बहुत-से बच्चे आठवीं, दसवीं या बारहवीं के बाद ही स्कूल से बाहर हो गए होंगे और उसमें अधिकतर ग़रीब पिछड़ी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चे होंगे। इसमें अधिकतर लड़कियाँ भी शामिल रही होंगी। यह चलन हम अभी भी देख सकते हैं।

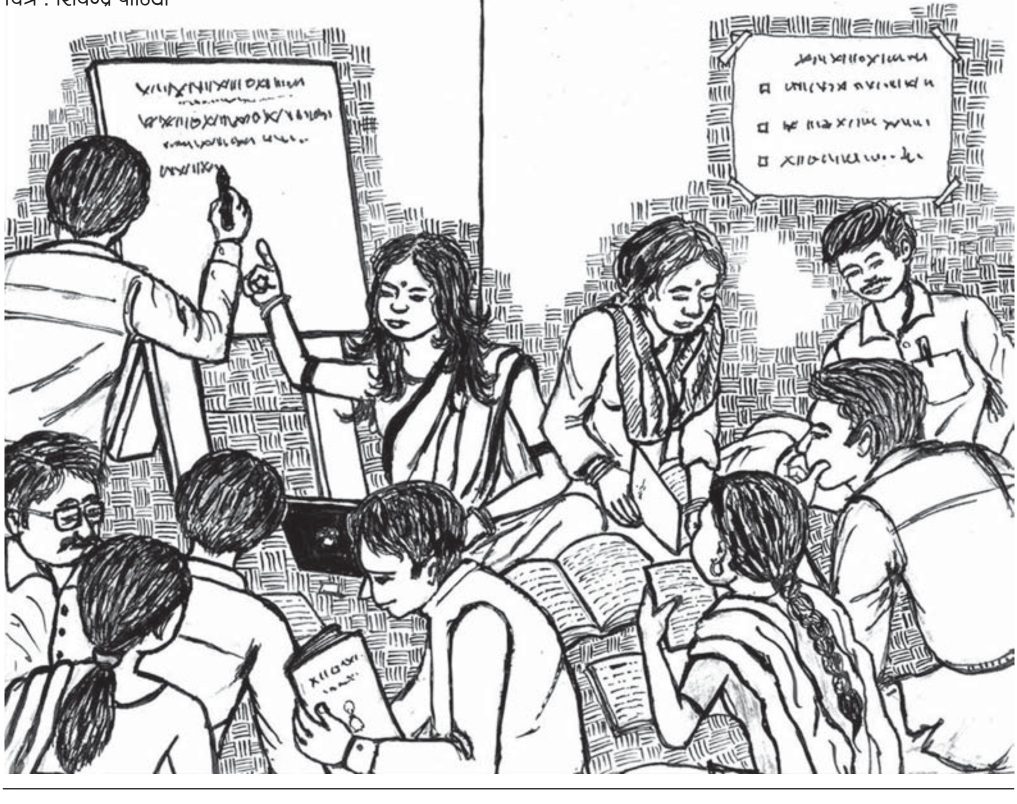
सर्व शिक्षा अभियान के तहत स्कूलों में नामांकन तो बढ़ा है, पर बहुत-से बच्चे पढ़ने के बुनियादी कौशल ही हासिल नहीं कर पा रहे हैं और उन्हें आगे की कक्षाओं की विभिन्न अवधारणाओं को समझने में बहुत कठिनाई होती है। इसके फलस्वरूप वे पिछड़कर स्कूल से बाहर हो जाते हैं। इन सबपर सोचने के लिए शिक्षकों को चर्चा के लिए उकसाना पड़ता है तब ही कुछ बातें उनकी पकड़ में आती हैं। इसके बाद आगे के सत्र में पढ़ने और पढ़ना सिखाने के तरीक़ों पर अच्छी चर्चा होती है। इस चर्चा में फ्रेंक स्मिथ द्वारा लिखित व सुशील जोशी द्वारा अनूदित एक पेज का नोट 'पढ़ना मुश्किल बनाने के बारह आसान तरीक़े' भी अच्छी भूमिका निभाता है। इसी तरह रमाकांत अग्निहोत्री का अँग्रेज़ी से अनुवाद किया हुआ लेख 'पढ़ना किसे कहते हैं?' वह भी शिक्षकों के साथ चर्चा के लिए अच्छी भूमिका बनाता है जिसमें बच्चों को पढ़ने के नियमित अभ्यास, अर्थ निर्माण और बच्चों को पाठक बनाने की बात की गई है। इससे यह बात हो पाती है कि जब हम पढ़ने को अर्थ निर्माण की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं तो केवल वर्ण पहचान से काम नहीं चलता जैसे कि 'अशोक की कहानी' में शिक्षिका प्रयास कर रही थी। तब यह समझना होगा कि जब बच्चों के शिक्षण में अर्थ निर्माण

केन्द्र में होगा तो बच्चों के लिए सन्दर्भ महत्त्वपूर्ण होगा और सन्दर्भ बनाने के लिए बच्चों के साथ चित्र, कहानी, कविता के साथ शुरुआत करनी होगी जिसमें बच्चों को अर्थ बनाने का मौक़ा मिले। इसी पर आगे बातचीत करते हुए वर्ण और मात्रा पहचान का काम भी करवा सकते हैं। इसके साथ ही कक्षा की प्रक्रियाओं में और कार्य करने होंगे, जिसमें चाहे बच्चों के मौखिक भाषा विकास की बात हो, बच्चों के घर की भाषा को जगह देने की बात हो, भाषा समृद्ध माहौल की बात हो या बच्चों को पढ़ने के मौक़े देने की बात हो, इन बातों पर ध्यान देना होगा तभी हम बच्चों के साथ पढ़ना-लिखना सिखाने के उद्देश्यों पर सही दृष्टिकोण के साथ कार्य कर पाएँगे। इन सब मुद्दों पर हमें निरन्तर समझ बनाने का प्रयास करना होगा, और यह समझ केवल एक कार्यशाला से नहीं बन जाएगी। इन सबके साथ हमें बच्चों की पृष्ठभूमि, उनका सन्दर्भ, उनके सीखने का तरीक़ा भी समझना पड़ता है, और उनके लिए योजना बनानी पड़ती है, तब हम बच्चों के साथ सही से शिक्षण कार्य कर पाते हैं। इसके लिए निरन्तर सोच-विचार ज़रूरी है जो कि 'अशोक की कहानी' की शिक्षिका नहीं कर पा रही थी।

पाठ और पाठ्यपुस्तकें

शिक्षकों के साथ एक कार्यशाला में एनसीईआरटी द्वारा विकसित भाषा की पाठ्यपुस्तक श्रृंखला *रिमझिम* पर भी बात की गई। समूह बनाकर शिक्षकों को कुछ पाठ दिए गए। उनके साथ पाठ के नज़रिए व उद्देश्यों को समझने की दृष्टि से बात की गई। शिक्षकों के साथ बात करते हुए समझ में आया कि उनका कहानियों/कविताओं को देखने का नज़रिया परम्परागत व सीमित है। वे पाठ्यपुस्तकों में शामिल रचनाओं को उपदेशमूलक नज़रिए से देख पाते हैं। इससे यह महसूस होता रहा

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

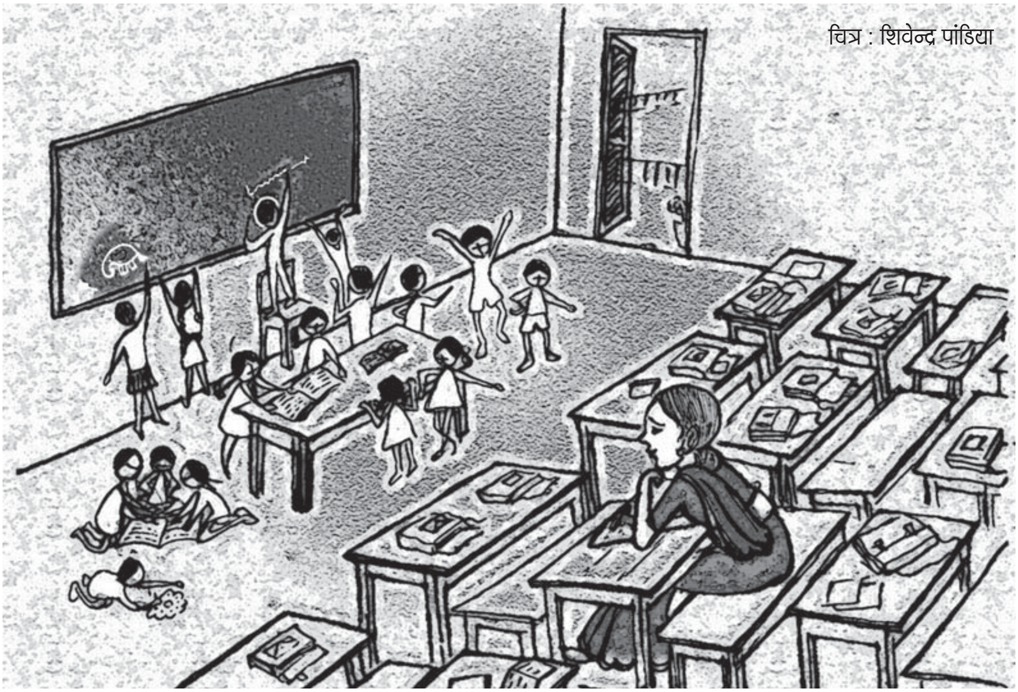


है कि उन्हें विभिन्न तरह की रचनाओं का नियमित रूप से एक्सपोजर दिया जाए। इसकी पृष्ठभूमि में समझ यह है जब उन्हें ख़ुद पढ़ने में अच्छा लगेगा और वे पढ़े हुए को महसूस कर पाएँगे, तब वे बच्चों को समझ के साथ पढ़ा भी पाएँगे। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए कार्यशाला में एक सत्र आयोजित किया गया। उसमें उन्हें चार समूह बनाकर पाठ्यपुस्तक के इतर बाल कविताएँ-कहानियाँ पढ़ने को दी गईं और उनसे कहा गया वे इन्हें व्यक्तिगत रूप से पढ़ें और समूह में चर्चा करें कि उन्हें पढ़कर कैसा लगा? रचनाओं में क्या बात अच्छी लगी? क्यों अच्छी लग रही है? आदि। शिक्षकों से विभिन्न रचनाओं के माध्यम से कविता की भाषा, विषयवस्तु आदि पर बात हुई और यह स्पष्ट करने की कोशिश की गई कि वे चर्चा में यह ग़ौर कर सकते हैं कि रचनाओं में क्या बात कही जा रही है? और कैसे कही जा रही है? इस सत्र का समेकन इस बात से किया गया कि जब रचनाओं पर हमारी अच्छी पकड़ होगी तभी हम बच्चों को अच्छे-से पढ़ा पाएँगे।

इस क्रम में कक्षा चार की पाठ्यपुस्तक से एक पाठ 'पापा जब बच्चे थे' बड़े समूह में पढ़ा गया। इसमें कहानी के शुरू में एक बच्चे की बाल सुलभ सोच को दर्शाया गया है, जिसमें वह चौकीदार, आइसक्रीम वाला, कुत्ता आदि बनना चाहता है और कहानी हास्य पैदा करती है, लेकिन कहानी अन्त में एक अच्छा इंसान बनने के बारे में गम्भीर सवाल छोड़ जाती है। इस पाठ पर शिक्षकों ने शुरुआत में बच्चे की बाल सुलभ कल्पनाओं की बात तो बताई और कहा कि इसको लेकर हम बच्चों से बात कर सकते हैं कि तुम्हारा क्या-क्या बनने का मन करता है? एक शिक्षिका कहने लगीं कि बच्चे क्या बनना चाहते हैं इसके लिए शिक्षक और उनके माता-पिता को उनका मार्गदर्शन करना चाहिए।

इस पाठ में बातचीत में आगे यह किया जा सकता है कि हम बच्चों से पूछें कि बचपन में उनके माता-पिता क्या बनना चाहते थे? यह बच्चे अपने घर से पूछकर आ सकते हैं और फिर उनकी सोच और उनके माता-पिता की सोच में एक अन्तर भी उन्हें दिखाया जा सकता

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया



है। इस चर्चा में कहानी के अन्त में आए सवाल पर वे बहुत गम्भीरता नहीं दिखा पाए कि अच्छा इंसान कौन होता है? इस सवाल पर बच्चों से अच्छे-से चर्चा की जा सकती है।

बच्चों से यह बात हो सकती है कि तुम्हारे परिवार में या तुम्हारे आसपास अच्छा इंसान कौन है? कैसे है? इस तरह बच्चों के अनुभवों पर उनसे अच्छी चर्चा की जा सकती है? आगे उनसे हुई बातचीत में कहानी की संरचना के बारे में भी बताया गया कि कैसे कहानी शुरू में हास्य पैदा कर रही थी और बाद में उसने एक गम्भीर सवाल पर लाकर खड़ा कर दिया। इस प्रकार हमें पाठ और उसके नज़रिए को समझने की आवश्यकता है, तभी हम पाठ के उद्देश्य तय कर पाएँगे और कक्षा में एक योजना के तहत कार्य कर पाएँगे। इसी तरह एक कार्यशाला में कक्षा तीन के एक पाठ 'चाँद वाली अम्मा' पर सार्थक चर्चा हुई। इसमें एक शिक्षक ने कहा कि इस पाठ में बच्चों के लिए कुछ नहीं है— बादल बुढ़िया को चिढ़ाता है। इसमें कोई कहानी नहीं है न ही बच्चों को कोई सन्देश मिलता है।

इसपर शिक्षकों के साथ काफ़ी चर्चा करनी पड़ी कि हर पाठ में कोई-न-कोई सीधा सन्देश हो, यह ज़रूरी नहीं है, और इस तरह से कहानी-कविताओं को देखना भी नहीं चाहिए। यह पाठ कल्पनाशीलता लिए हुए है जिसमें बादल बच्चों को चिढ़ा रहा होता है। बच्चों को कहीं अपनी लोककथाओं से पता होता है कि चाँद पर एक बुढ़िया है। अगर नहीं भी पता हो तो उसे पढ़वाया जा सकता है और दोनों पाठ की तुलना हो सकती है। इस कहानी में बच्चों के लिए ऐसा ही काल्पनिक जुड़ाव बनाने की कोशिश की गई। इस प्रकार हम इस कहानी को देख सकते हैं और बच्चों के साथ कहानी पर चर्चा कर सकते हैं।

पढ़कर समझने के रण में नीतियाँ

मुझे हाल ही में सम्पन्न एक कार्यशाला का अनुभव याद आ रहा है। उस सत्र में हमें बच्चों के 'पढ़कर समझना सिखाने में शिक्षक की भूमिका' विषय पर बात करनी थी। उसके लिए हमने कुछ प्राथमिक कक्षाओं के अवलोकनों का समूह बनाकर इस्तेमाल किया। उस समूह कार्य के उपरान्त प्रतिभागियों से यह बात उभरी कि कक्षा में शिक्षक का पढ़ना सिखाने का नज़रिया क्या है? और वह कक्षा में क्या कर रहा है? उसका ध्यान सही उच्चारण, सन्दर्भरहित शब्दों के दोहराव, पाठ के प्रश्नोत्तर लिखवाने तक सीमित है। फिर प्रत्येक समूह को प्राथमिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों से कुछ पाठ पढ़ने को दिए और कहा कि इन पाठों को पढ़कर यह देखें कि इसमें बच्चों को पढ़कर समझने के लिए आप क्या रणनीतियाँ अपनाएँगे। इन पाठों में कहानी, जानकारीपरक पाठ, निबन्ध, जीवनी, यात्रा वर्णन आदि शामिल थे। ज़ाहिर है पढ़कर समझने में भी कई चीज़ें शामिल होती हैं, जिसमें कहानी को अपने अनुभव से जोड़ना, भाषाई सौन्दर्यबोध, अवधारणाओं को समझना, अपने परिवेश के प्रति जागरूकता, सामाजिक संवेदनशीलता आदि बातें शामिल थीं। इस अभ्यास से यह बात समझ में आई कि पढ़कर समझने के लिए बहुत-सी रणनीतियाँ बनानी पड़ती है, जैसे— अगर पाठ में कोई अवधारणाएँ आ जाएँ तो उन्हें स्पष्ट करना पड़ता है और विज्ञान व सामाजिक अध्ययन के पाठों में ऐसा ख़ूब होता है।

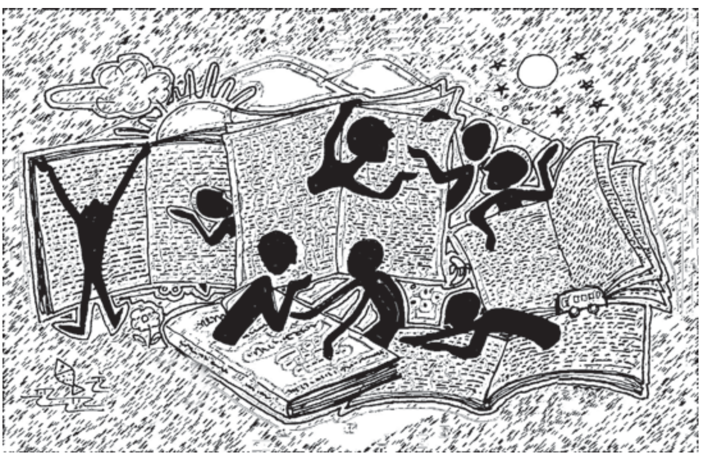
इसी तरह जब पाठ को पूर्व अनुभवों से जोड़ने की बात होती है तो कुछ पाठ ऐसे होते हैं जो उन्हें फ़र्क़ नज़रिया देते हैं। उसका उन्हें एहसास कराना पड़ता है। किसी पाठ में कुछ स्थानों या देशों के नाम आ जाते हैं तो हम नक़्शे का प्रयोग भी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, पाँचवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तकों में 'फसलों का त्योहार' नामक पाठ है। यह पाठ है तो भाषा की पाठ्यपुस्तक में, लेकिन इस पाठ के मुद्दे पर्यावरण अध्ययन से भी जुड़ते हैं जिसमें हम विभिन्न राज्यों को नक़्शे पर परिचित कराते हुए इन त्योहारों की बात कर सकते हैं और भारत की विविधता की बात कर सकते हैं। आगे इसे बच्चों के अपने परिवेश से जोड़ सकते हैं। यहाँ

शिक्षक को अलग तरह की योजना बनानी होगी। ऐसे ही हम अगर बच्चों के साथ तीसरी कक्षा के पाठ 'मीरा बहन और बाघ' पर कार्य कर रहे हैं तो वहाँ बच्चों को मीरा बहन, गाँधीजी और पहाड़ों के सन्दर्भ में बच्चों के साथ चर्चा करना होगी तभी इस पाठ से बच्चे जुड़ पाएँगे। 'नन्हा फनकार' पाठ को पढ़ाते हुए हमें बच्चों के सामने अकबर और उसके समय के बारे में थोड़ा बताना होगा, तब बच्चे पाठ से जुड़ पाएँगे। इसी तरह 'स्वतंत्रता की ओर' पाठ पढ़ाने के लिए भी गाँधीजी और साबरमती आश्रम का सन्दर्भ बच्चों के साथ रखना होगा। यहाँ कहने का अर्थ है कि कक्षा में बच्चों के साथ कार्य करते हुए पहले स्वयं पाठ को समझना पड़ता है, उसकी बातों को पकड़ना होता है और फिर बच्चों के लिए योजना बनानी पड़ती है।

बाल पुस्तकें : समझ कैसी–कैसी ?

कार्यशाला के दौरान शिक्षकों के साथ बच्चों के पढ़ने और पुस्तकालय के सत्र भी आयोजित होते रहते हैं। एक कार्यशाला में शिक्षक अपने विद्यालय के बच्चों के साथ पुस्तकालय संचालन का अनुभव साझा कर रहे थे। पुस्तकालय से बच्चे काफ़ी किताबें पढ़ते हैं। उनसे यह चर्चा की गई कि आप इतने वर्षों से बच्चों के साथ काम कर रहे हैं तो यह बताएँ कि बच्चों को कौन-सी किताबें बहुत अच्छी लगीं? और इसके क्या कारण रहे होंगे? इसपर शिक्षकों ने कई किताबों के साथ *मिठाई, बुढ़िया की रोटी* व *हाथी की हिचकी* आदि किताबों के नाम लिए। फिर आगे यह कहा गया कि इन तीन किताबों को हम थोड़ा अच्छे-से समझने का प्रयास करते हैं। इसके लिए हम किताबों की विषयवस्तु, इसके चित्र, इसकी भाषा, मूल्य आदि को देखने का प्रयास करेंगे। इसपर शिक्षकों के साथ अच्छे-से चर्चा की गई। इसमें शिक्षकों से बातचीत में यह बात उभरकर आई कि ये किताबें बच्चों के आसपास के परिवेश से जुड़ी हुई हैं, इनमें पशु-पक्षी हैं, बाल मन की बात है, चित्र भी अच्छे हैं आदि। इस सत्र के समेकन में यह बात हुई कि इन तीनों किताबों पर जो आपने बात कही वह ठीक है। इन तीनों किताबों में सबसे ख़ास बात यह है कि इनमें एक क्रमबद्धता है जो बच्चों को कहानी का अनुमान लगाने व पैटर्न पकड़ने में मदद करती है। *मिठाई* में तो दोस्ती की बात भी है और उससे वे बहुत जल्दी जुड़ाव भी बना लेते हैं। इस किताब को छोटे बच्चे बार-बार पढ़ना चाहते हैं। चित्रों को देखकर अनुमान भी लगाते हैं। इसी तरह *हाथी की हिचकी* में हम देखते हैं उसमें भी दोस्ती की बात है। सभी हाथी की हिचकी को दूर करने का उपाय बताते हैं और वे अपने परिवेश का अनुभव भी करते हैं और उसमें बाल सुलभ कल्पना भी है, और अन्त में सबसे छोटा जीव चूहा हाथी की हिचकी को ठीक करता है।

यहाँ बच्चों का अच्छा जुड़ाव बनता है। इसकी ख़ास बात यह भी है कि एक कहानी पूरी होने के बाद इसमें एक नई कहानी भी शुरू होती जो बच्चों को ही बनानी होती, जब हाथी को छींक आना शुरू होती है। इस तरह से हम देखते हैं बच्चों की किताब इस तरह की हो सकती है। इस तरह के पैटर्न से बच्चों को किताब पढ़ने में मदद मिलती है। *बुढ़िया की*



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

रोटी में एक पैटर्न है जिससे बच्चे अच्छा जुड़ाव बनाते हैं। यह किताब एक लोककथा के फ़ॉर्मेट में है। इसे भी बच्चे ख़ूब पसन्द करते हैं। इसके चित्र भी बहुत जीवन्त हैं, उनसे बच्चों का अच्छा जुड़ाव बनता है। हम इस तरह से आगे भी बच्चों की किताबों को देख सकते हैं। उनमें क्या ख़ूबियाँ होती हैं, इन्हें हमें पहचानना सीखना चाहिए। इसके लिए किताबें पढ़ना ज़रूरी है और फिर इन्हें बच्चों के साथ उपयोग करना भी ज़रूरी है। इसके लिए भी एक योजना की ज़रूरत होती है और जब हम किताबें अच्छी तरह से पढ़ेंगे तो योजना भी सही तरीक़े से बना पाएँगे। किताबों पर योजना के अन्तर्गत प्रश्न ऐसे होने चाहिए जो कहानी का जुड़ाव उनसे बनाते हों और उन्हें सोचने का मौक़ा देते हों। बच्चों से बातचीत में तथ्यात्मक प्रश्न उन्हें सोचने में बहुत मदद नहीं करते। अच्छे प्रश्न बनाना भी अभ्यास से ही आता है।

मेरे अनुभव : मेरी समझ

इस तरह से विभिन्न सेवारत शिक्षक-प्रशिक्षणों में चर्चा के दौरान विविध तरह के अनुभव मिलते रहते हैं, जो शिक्षकों के साथ सन्दर्भ व्यक्ति को भी सोच-विचार करने में मदद करते हैं। इससे आगे की कार्यशालाओं की विषयवस्तु तय करने में मदद मिलती है। इसके साथ ही कार्यशाला को अन्तर्क्रियात्मक बनाने के लिए एक सन्दर्भ व्यक्ति के लिए ज़रूरी होता है कि वह कैसे किसी प्रशिक्षण / कार्यशाला का ख़ाका बनाए, उसमें किस तरह के सवाल / गतिविधि रखे, जो शिक्षकों को अपने पूर्व ज्ञान पर विचार करने का मौक़ा दें। इस कार्य में सन्दर्भ व्यक्ति के फ़ील्ड के अनुभव योजना बनाने में बहुत मदद करते हैं। इसके साथ ही शिक्षकों के लिए सहज पाठ्य सामग्री के बारे में भी सोचना पड़ता है। कभी-कभी इसे तैयार भी करना पड़ता है। इन बातों से ही किसी प्रशिक्षण / कार्यशाला की गुणवत्ता बढ़ती है। एक सन्दर्भ व्यक्ति को यह भी सोचना चाहिए कि किसी एक प्रशिक्षण से ही सब समझ बन जाएगी, ऐसा नहीं होता। यह ज़रूर हो सकता है कि कार्यशाला में भाग लेने पर समझ बनने के कुछ विचार पड़ जाएँ और आगे यह सिलसिला शुरू हो। इसका प्रयास सन्दर्भ व्यक्ति को करना चाहिए। शिक्षकों के साथ काम करते हुए यह महसूस होता है कि किसी विषय पर समझ बनाने के लिए उनके साथ सतत संवाद की ज़रूरत पड़ती है और बहुत बार फ़ील्ड की परिस्थितियों में ऐसा हो भी नहीं पाता। इसके कई कारण शैक्षिक व्यवस्था में ढूँढ़े जा सकते हैं और उनके हल के लिए भी प्रयास किए जा सकते हैं। शिक्षकों के साथ लम्बे समय तक काम करने के अनुभव में यह बात समझ में आती है कि शिक्षकों को एक चिन्तनशील शिक्षक के रूप में विकसित करना एक दूरगामी लक्ष्य है। इसमें प्रशिक्षण की गुणवत्ता पर तो ध्यान देना ही पड़ेगा और केवल इससे ही बात भी नहीं बनेगी। इसके लिए सतत संवाद के साथ व विद्यालय स्तर पर अनुसमर्थन की भी आवश्यकता पड़ती है। इसमें दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह लगती है कि इसमें शैक्षिक व्यवस्था को भी उनके लिए सीखने का सहज माहौल और सहयोग प्रदान करने की ज़रूरत पड़ती है। इस दिशा में बहुत काम करने की आवश्यकता महसूस होती है जो कि हो नहीं पाता। शिक्षकों के बीच आपसी चर्चाओं में अभी कहीं गतिविधि, टीएलएम, शैक्षिक तकनीकी आदि का भी काफ़ी आदान-प्रदान होता रहता है और यह लगता है कि इन सबसे ही कक्षा की प्रक्रियाओं में सुधार हो जाएगा। और यह कि ये कोई नुस्ख़ा है। यहाँ यह बात ग़ौर करने लायक़ लगती है कि एक शिक्षक को इन तात्कालिक बातों से उबरकर शिक्षा के मूलभूत सवालों पर गहराई से विचार करना होगा तभी वह असल में विचारशील शिक्षक के रूप में विकसित हो सकेगा।

कमलेश चंद्र जोशी प्राथमिक शिक्षा से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। प्राथमिक शिक्षा से जुड़े विभिन्न विषयों– शिक्षक शिक्षा, बाल साहित्य, प्रारम्भिक भाषा एवं साक्षरता आदि में गहरी रुचि। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ऊधम सिंह नगर में कार्यरत।
सम्पर्क : kamlesh@azimpremjifoundation.org